प्रवचन नं. १ श्लोक-१ ता. ७-६-७८ बुधवार जेठ सुद-२ सं. २५०४

हिन्दी श्लोक १ पर पूज्य गुरुदेव श्री का प्रवचन

समयसार उन्नीसवीं बार चलता है अठारह बार पूरा हो चुका है पहले का थोड़ा बाकी था, ओम् श्रीमद्भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री समयसार। जीव-अजीव अधिकार श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरी कृत आत्मख्याति।

(अनुष्टुभ्)

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते ।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे।।१।।

मूलगाथा का आत्मख्याति टीका का गुजराती अनुवाद (का हिन्दी अनुवाद)। अर्थकर्त्ता मंगलाचरण करते हैं।

श्री परमातम प्रणमीने, शारद सुगुरु मनाय
समयसार शासन करूं देशवचनमय भाय।।१।।

देव, शास्त्र और गुरु तीनों को पहले नमस्कार किया है। तीन नाम आते है देव-शास्त्र-गुरु, देव-शास्त्र-गुरु ऐसे नहीं देवशास्त्रगुरु। परमात्मा को प्रणाम कर। पूर्णपरमात्मस्वरूप को नमस्कार करके। शारद नाम शास्त्र उसे नमस्कार करके। सुगुरुको सद्गुरुको नमस्कार करके। आया है न ? तीनों को नमस्कार करके, समयसार शासन करूं।समयसार का कथन अथवा शिक्षा अथवा शासन सलाह...।

भाई, प्रचलित भाषा में

शब्दब्रह्म परब्रह्म का, वाचक वाच्य नियोग
मंगलरूप प्रसिद्ध पद, नमुं धर्मधन-भोग।

शब्दब्रह्म जो भगवान की वाणी वह परम ब्रह्म को कहनेवाली, यह परम ब्रह्मस्वरूप भगवान `वाचकवाच्यनियोग', शब्द है वह वाचक है। जैसे शक्कर (शब्द) है यह वाचक है। उसमें शक्कर नहीं है, शक्कर है वह वाच्य है। इसीप्रकार आत्मा शब्द है वह वाचक है और आत्मा है वह वाच्य है। यह आत्मा वाच्य है उसमें शब्द नहीं, और जहाँ शब्द है वहाँ वाच्य नहीं। परंतु वाचक वाच्य का नियोग, नियम संबंध है। निमित्त नैमित्तिक संबंध (है)। शब्दब्रह्म परब्रह्म का वाचक है, शब्द वाचक है और परब्रह्म वह वाच्य उसका नियोग संबंध है निमित्त नैमित्तिक।

मंगलरूप प्रसिद्धि यह, यह मंगलरूप है। भगवान की वाणी और भगवानस्वरूपआत्मा मंगलरूप प्रसिद्धि यह नमुँ नमस्कार करता हूँ। धर्मरूपी धन के अनुभव के लिये। मेरा धर्मरूपी धर्म आनंद- ऐसा मेरा धर्म यह हमारी लक्ष्मी आनंदरूपी धर्म की लक्ष्मी के भोग के लिये यह मंगल करता हूँ। आहाहा ! आनंद स्वरूप आत्मा है, यह उसकी लक्ष्मी है उसका धन है उसे भोगना है। अपनी संपदा है, आनंद अतीन्द्रियज्ञान यह निज संपदा निज धन, निज लक्ष्मी, उसे भोगने के लिये अनुभवने के लिये, यह वाणी हमनें की है, आहा ! दूसरा कोई हेतु है नहीं आहा ! जिसमें से अतीन्द्रिय आनंद का, अतीन्द्रिय आनंदरूपी धन का पर्याय में भोग होता है अनुभव हो इस हेतु शास्त्रके अर्थ करने का प्रयोजन यह है। आहा ! आहा !

श्रोता :- अर्थ करना तो परलक्षीभाव है।

गुरुदेव :- परलक्षी तो भाषा है, परंतु मेरा लक्ष्य तो इधर ही है मेरी धन रूपी संपदा उसके अनुभव के लिये मेरी बात है। - ऐसा अमृतचन्द्राचार्य ने कहा है न (कि) टीका करने से मेरी अशुद्धता टल जाय, और शुद्धता प्रगट हो जाय। यहाँ शुद्धता अर्थात् मांगलिक अनुभव हो - ऐसा कहते हैं। आहाहा !

आत्मा का धन... धर्मरूपी धन, आत्मा का स्वभाव अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय आनंद अतीन्द्रिय चैतन्य के रत्नों से भरा हुआ भगवान - ऐसा जो मेरा धर्मरूपी धन, यह मेरा धर्मरूपी धन, उसका अनुभव उसका भोग-अनुभव के लिये यह मैं अर्थ करूंगा (- ऐसा) कहते हैं।

`**नय नय सार लहे शुभ वार**' परंतु इन शब्द शब्द (में) नया नया, सार निकलेगा चाहे निश्चयनय का कथन हो चाहे व्यवहार(नय) का कथन हो। परंतु नय नय सार लहे शुभ वार और अच्छे समय में शुभ समय में, आज तो अपन दूज और बुधवार

को प्रारंभ करते हैं। जेठ सुद दूज बुधवार है ना आज ? दूज का बुधवार है `नय नय सार' नय नय अर्थात् शब्दों शब्दों में, नय के वाक्यों का सार क्या है, वह उसका समय, उसके समयमें सार निकलेगा। `पद पद मार' और पद पद में नष्ट करता है संसार के मल (विभाव) को नाश कर डाले - ऐसे पद है यह सभी। आहाहा! पद पद मार - पग पग (पर) कदम कदम (पर) पर्याय पर्याय में - ऐसा कहते हैं आत्मानंद के अनुभव करने के लिये यह है। यह अनुभव की पर्याय पर्याय में दुःख जले। जन्म-मरण को (नष्ट) नाश करे, पग पग (अर्थात) पर्याय पर्याय में जन्म-मरण का नाश, दुःख को करनेवाला - ऐसा जन्म-मरण उसका नाश करता है आहाहा।

`**लय लय पार गहइ भव धार**' और इस आनंद स्वरूप में जितनी मग्नता हो लीनता (हो).... करना तो यह द्रव्यका आश्रय है। लाख बात की बात हो तो, शास्त्र के बारह अंग, बारह अंग में भी अनुभूति का कथन है आता है न ? कलशमें, चाहे बारह अंग है वह विकल्प है, परंतु उसमें अनुभूति, आत्मा शांति और आनंद स्वरूप उसकी अनुभूति करने का विधान है। उसमें - ऐसा नहीं कहा कि पुण्य करने रूप व्यवहार करने का विधान है। इसप्रकार `**लय लय पार गहइ भव धार**' भव का धारण (वह) स्वरूप की लीनता लीनता में पार कर जाता है। भव धरने से पार हो जाता है, लीनता करते। आहाहा ! अंतर्मुख दृष्टि करने पर लीनता लीनता (करते) पार (होजाता) लीनता लीनता (करके) पार करता किसको ? भव धार भव धारण का नाश करता (है) आहाहा ! जय जय दो दो शब्द है यह। नय नय, पद पद, लय लय, जय जय, **जयजयसमयसार अविकार** जय हो जय हो शुद्धात्मा, अविकारी है ना ? अविकारी समयसार शुद्धात्मा उसकी जय हो, जय हो आहा। अस्ति से मंगलाचरण किया।

शब्द अर्थ अरु ज्ञान समयत्रय आगम गाये,

शब्द को भी समय कहते हैं, अर्थ (अर्थात) पदार्थ को भी समय कहते हैं और ज्ञान को समय कहते हैं। समयत्रय आगम गाये। आगम इनको (तीनों को) समय कहता है, काल को भी समय कहते हैं मत को भी समय कहते हैं सिद्धान्त को भी समय कहते हैं। **भेद त्रय नाम बताया**, इनमें आदि शुभ इन सब में मूल सार कौन (है) ? कि शुभ अर्थ समय कथनी शुभ पदार्थ - ऐसा भगवान शुद्धात्मा शुभ अर्थात् शुद्ध पदार्थ - ऐसा समय आत्मा उसकी कथनी सुनिये बहु। आहाहा ! उसका कथन सुनो बहु बहुत बार कहूँगा, परंतु यह कहूँगा। उसमें प्रथम तो शुभ नाम अच्छा - ऐसा जो अर्थ अर्थात् पदार्थ समय कथनी सिद्धांत की बहुत शुद्ध कथनी सुनो।

शुद्धात्मा पवित्र प्रभो ! उसकी बहुत व्याख्या करेंगे - कहते हैं। है (ना) ? कथनी (सार) सुनिये बहु बहुत कहूँगा, बहुत सुनो-आहाहा ! `**तातै जु सार बिन कर्म मल**' कर्म रहित उसमें भी जीव नामक पदार्थ सार है कि `निर्मल शुद्ध जीव शुद्ध नय कहै' उस जीव को हम (अर्थात) अर्थ समय को बारम्बार कहेंगे परंतु वह अर्थ समय कैसा ? कि उसमें सार (भूत) कर्म मल रहित, कर्म अर्थात् भाव, द्रव्य कर्म से रहित - ऐसा जो शुद्ध प्रभु आत्मा उसे शुद्धनय कहूँगा, उसे शुद्धनय कहते हैं उसे शुद्धनय कहेंगे आहाहा!

शुद्धजीव शुद्धनय कहै। `**इस ग्रंथ मांहि कथनी सबै**' देखा ? इस ग्रंथ की सभी कथनी **समयसार बुधजन गहै।।** ज्ञानी जन सयाना पुरुष समयसार के शुद्ध को ग्रहण करते हैं। शुद्ध समयसार उसमें से निकाले। आहाहा ! चाहे जितने बहुत कथन आयें, परंतु उसमें से सार प्रभु शुद्ध चैतन्य यही निकालते है। उसका आश्रय करना यह निकालते है। आहाहा ! **लाख बात की बात...** आती है ना ? निश्चय उर लाओ छोड़ी जगत द्वंद्व फंद, निज आत्म हृदय में ध्याओ। आहाहा ! इस आत्मा को मूल चीज जो है। उसे, बारम्बार हे बुद्धिमान ग्रहण करो।

`**नामादिक षट् ग्रंथ मुख**' अब तो वह स्वयं बात करते हैं शास्त्रकर्त्ता नामादिक छह बोल है, नाम है मंगलाचरण है, शास्त्र कर्त्ता कौन है, संख्या कितनी है, प्रयोजन क्या है इसप्रकार ६ नाम है **नामादि छह ग्रंथ मुख, तामें मंगल सार, विघनहरन नास्तिक हरन, शिष्टाचार उचार।।** छह में भी मंगल सार है... आहाहा नाम शास्त्र मंगलिक कर्त्ता प्रयोजन वगैरह। उसमें भी मंगलसार (है) `विघ्नहरण' बाधाओं को नष्ट करनेवाला है यह मांगलिक सार (रूप) विघ्नों का नाश करनेवाला है आहाहा ! `नास्तिकहरण' और नास्तिकताका नाश करनेवाला है (और) अस्तिपने को प्रतीति करानेवाला है आहाहा ! `शिष्टाचार' परम्परारूप जो शिष्ट आचार है संतों का, वह बतानेवाला है - ऐसा उच्चारण करनेवाला है।

`**समयसार जिनराज है,**' अब आखिरका शब्द अब यह समयसार यह जिनराज है... शुद्धआत्मा यह जिनराज है `घट घट अंतर जिन बसे, घट घट अंतर जैन' आहा ! जैन कोई पंथ नहीं, जैन कोई संप्रदाय नहीं, जैन अर्थात् समयसार स्वरूप आत्मा वह जैन है आहाहा !

`समयसार जिनराज है' जिनराज यह समयसार आत्मा शुद्धात्मा यह जिनराज है `स्याद्वाद जिनवेन' आहाहा ! तीन रखे है देव, शास्त्र और गुरु तीन पहले कहे थे ना ? उन तीनों को पुनः याद करते है कि समयसार जिनराज है देव, देव अपना आत्मा समयसार यह जिनराज है। अथवा जिनराज वह देव है `स्याद्वाद यह

जिन नैन' सापेक्ष कथन वह, शारदा वीतराग की वाणी है पहले कहा तुम यह देव, शास्त्र और गुरु `**मुद्रा जिन निरग्रंथता**' यह गुरु की व्याख्या (स्वरूप) है आहाहा ! मुद्रा जिन निर्ग्रंथदशा बाह्य और अभ्यंतर निर्ग्रंथ दशा वह मुद्रा वह गुरु `**नमूं करै सब चैन**' मैं इन तीनों को देव को शास्त्र को गुरु को `नमूं करै सब चैन' नमस्कार करने से सब चेन अर्थात् आनंद को दे। चैन करे, चैन पड़े आनंदमय, देव-शास्त्र-गुरु को वंदन करते, है विकल्प, परंतु अंदर लक्ष्य है, ध्येय आनंद की प्रतीति और चेन मिले इसलिये मैं नमस्कार करता हूँ।

इस प्रकार मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करके श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत गाथाबद्ध समय प्राभृत ग्रंथ की श्री अमृतचन्द्रआचार्य कृत आत्मख्याति नाम की जो संस्कृत टीका है, उसकी देश भाषा में आत्मख्याति की वचनिका करेगें - ऐसा कहते हैं। टीका तो दो हैं जयसेनाचार्यकी भी। इसमें आत्मख्याति की टीका करेंगें अमृतचन्द्राचार्य में - ऐसा लिखते हैं।

देश भाषा में लिखते हैं संस्कृत टीकामें से, **प्रथम संस्कृत टीकाकार श्री अमृतचन्द्राचार्य ग्रंथ के प्रारंभ में पहले श्लोक द्वारा मंगल के अर्थ इष्ट देव को नमस्कार करते हैं।** इष्ट देव को नमस्कार करते हैं। इष्ट देव परमात्मा है और यथार्थ में इष्ट देव स्वयं प्रभु (निजात्मा) है। पुण्य और पाप के भाव वह अनिष्ट है, प्रवचनसार में है और भगवान आत्मा वह इष्ट है। निश्चय से शुद्धआत्मा वह इष्ट है व्यवहार से परमात्मा इष्ट है।

यह आया न शुद्धात्मा समय अर्थात जीव नामक पदार्थ इष्ट देव को नमस्कार करते हैं। गाथा, गाथा पढ़ ली है `**नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते। चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावांतरच्छिदे।।१।।**' अहो ! विशेषता देखो ! पहले अस्ति से ही बात की है नास्ति से बात ही नहीं की बंध का नाश, यह अजीव का नाश, यहाँ यह बात नहीं अस्ति एक ही बात आहाहा !

नमः समयसाराय ! समय नाम जीव नामक पदार्थ, उसमें जो सार द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म रहित, शरीर वाणी आदि नोकर्म जड़कर्म और भावकर्म पुण्यपाप... इससे रहित शुद्धात्मा वह समय है। आहाहा ! उसे हमारा नमस्कार हो। इसका विरोध करते हैं, कि इसमें तो इष्ट को परमात्मा को नमस्कार किया है व्यवहारनय से किया है परंतु व्यवहार से किया है इसमें निश्चय से किया यह उसमें संयुक्त है। आहाहा ! इसमें से यह अर्थ निकालते हैं। उसे हमारा नमस्कार हो। कैसा है भावाय ? अर्थात् समयसार जो भाव, समयसार जो वस्तु भाव अर्थात् वस्तु समयसार जो पदार्थ अर्थात कि भाव शुद्ध सत्ता स्वरूप वस्तु है यह शुद्ध सत्ता स्वरूप है, आहाहा ! सत्ता, भाव

है जो यह शुद्ध सत्ता स्वरूप है। भगवान पवित्र, होनेरूप वस्तु है वह वस्तु पवित्रपने, होनेपने, सत्तापने... आहाहा ! होने रूप जो चीज है। परंतु पवित्र सत्ता रूप जो चीज है सत्ता नाम होनापना शुद्धनाम पवित्रपना होनापना और वस्तु है आहाहा ! शुद्ध सत्ता स्वरूप वस्तु है... आहाहा !

इसकी सत्ता ही शुद्ध है, उसका अस्तित्व ही शुद्ध है, द्रव्य अपेक्षा से हों ! विशेष समकित स्वभावाय बाद में आयेगा... परंतु यहाँ तो `भावाय' वस्तु है, पदार्थ है, तत्त्व है, वह शुद्ध ही है। आहाहा ! यह शुद्ध सत्ता स्वरूप वस्तु है वस्तु को सिद्ध करना है ना ? `भावाय' में तो वस्तु को सिद्ध करना है। भावाय में गुणों को नहीं, गुण को बाद में कहेंगे `भावाय' वस्तु... भगवान आत्मा शुद्धवस्तु सत्ता है। अकेला ज्ञायक आनंद शांति स्वरूप वस्तु, वस्तु है, सत्ता है। `भावाय' है `भावाय' है पर से अभाव है यह बात यहाँ नहीं लेना। `भावाय' अस्ति से लेना है। नास्ति से बात ली नहीं `भावाय' इसका अर्थ आ गया कि पर से अभाव है परंतु स्वयं से `भावाय' है, वस्तु है, सत्ता है... आहा !

`इस विशेषणपद से सर्वथा अभाववादी नास्तिकों का मत खण्डित हुआ' अभाव का अर्थ नाश। - ऐसा कहते हैं वस्तु अभावरूप है, वस्तु है ही नहीं - ऐसा कहनेवालों को `भावाय' कह कर उनके नास्तिकपने का नाश किया है। वस्तु भाव स्वरूप है अनंत अनंत (भाव) स्वरूप वस्तु है, वस्तु है, पदार्थ है, द्रव्य है, तत्त्व है अस्ति... विद्यमानपदार्थ है - ऐसा कहते हैं आहाहा ! विद्यमानता धारण करनेवाली वस्तु है, अभावरूप नहीं। मौजूदगी (अस्तित्व) धारण करनेवाली सत्ता, भाव वस्तु है, ऐसी सत्तारूपभाव एक (रूप) वस्तु है। आहाहा ! - ऐसा है... अब यह उन्नीसवी बार पढ़ा जाता है। सूक्ष्म लगे। परंतु अंदर ध्यान देना होगा ना थोड़ा आहाहा ! यह तो वस्तु कही। द्रव्य कहा। शुद्धसत्तारूप पदार्थ है उसका वाच्य इसकी दृष्टि में आना चाहिए, इस हेतु से यहाँ कहा जाता है। - ऐसा कहते हैं।

यह शब्द तो वाचक है, परंतु वाचक वाच्य नियोग - ऐसा कहा उसमें वाचक शब्द और वाच्य का संबंध है अर्थात् शुद्धसत्तास्वरूप वस्तु है ऐसे जो वाचक शब्द उसका वाच्य शुद्ध सत्ता स्वरूप वस्तु है इस बात की दृष्टि इसमें आनी चाहिए। आहाहा ! **`इससे सर्वथा अभाव वादियों का'** कथंचित अभाव है, (यहाँ) सर्वथा क्यों कहा ? कथंचित अभाव है, अभाव है... सर्वथा अभाव नहीं। यदि कथंचित् अभाव न हो तब तो स्वसे है और पर से नहीं, यह नहीं बन सके। सर्वथा अभाव नहीं - ऐसा कहा है कथंचित अभाव है। पर की अपेक्षा अभाव है और स्व की अपेक्षा भाव है। पर की अपेक्षा अभाव होने पर भी सर्वथा अभाव का निषेध किया है। कथंचित

अभाव को तो सिद्ध किया है। आहाहा ! समझमें आया कुछ ?

सर्वथा अभाववादी नास्तिकों का मत खण्डित किया। स्वभाव तो वस्तु स्वपणे-सत्तापणे वस्तु तो है, इसलिये ही उससे अनंत-अनंत दूसरी वस्तुसे उसका अभाव है-अभाव है। ***अभाव भी उसका स्वभाव है। जैसा भाव स्वभाव है वैसा अभाव भी उसका एक स्वभाव है, परंतु सर्वथा अभाव, उसका निषेध करने के लिए 'भावाय' कह कर कथंचित, पर से अभाव है, परंतु सर्वथा पर से अभाव है,*** पर से नहीं अतः स्वयं से भी नहीं - ऐसा नहीं आहाहा ! समझ में आया ? सर्वथा अभाव (अर्थात) कथंचित अभाव को तो स्वीकार किया, कारण स्वरूप से वस्तु है, पर रागादिक रूप से नहीं जैसे स्वरूप से भी हो और पररूप से भी हो तो वस्तु की सिद्धि नहीं होती। आहाहा ! तब पररूप नहीं - ऐसा कहने से सर्वथा अभाव कहो तो सत्तारूप वस्तु का नाश होता है। आहाहा ! ऐसी वस्तु है, अब इसे फुरसत कहाँ, ऐसी वस्तु है बापू ! (भाई !) इसके निर्णय के लिये इसे समय निकालना पड़ेगा। आहा !

शुद्धसत्ता वस्तु है... अभी गुण की परिभाषा नहीं आयी, अभी तो द्रव्य की परिभाषा है शुद्धसत्ता द्रव्य है, सर्वथा अभाव द्रव्य का कहते हैं - ऐसा नहीं, कथंचित अभाव पर का इसमें अभाव है - इस अपेक्षा अभाव है, परंतु स्व का भी अभाव है - ऐसा नहीं, स्वरूप से है पररूप से नहीं, सर्वथा पररूप से नहीं अतः स्वयं ही नहीं। - ऐसा नहीं। आहाहा ! ऐसी बातें अब कहाँ इसे पकड़ में आयें (समझ में आयें) आहाहा! रास्ता - ऐसा है।

अब कहते हैं कि यह तो वस्तु है... वस्तु तो यह परमाणु भी है, छह द्रव्य हैं, परंतु यह (आत्मा) कैसी चीज है ? आत्मा जो वस्तु है, शुद्ध सत्तारूप द्रव्य है तो द्रव्य तो परमाणु आदि दूसरे भी है परंतु उनका स्वभाव क्या है, अब ? भावाय तत्त्व द्रव्य है तो उसका स्वभाव गुण क्या है ?

कि 'चित्स्वभावाय' जिसका स्वभाव चेतना गुणरूप है। आहाहा ! कैसी वाणी ! वस्तु भगवान अंदर शुद्ध चैतन्य वस्तु है वह चेतना स्वभाव गुणवाली है, वह गुण है उसमें चित् उसका स्वभाव चेतना, इसमें जानना-देखना गर्भित है। चेतनागुणरूप है... आहाहा ! स्वयं सत्ता, द्रव्य अपेक्षा भावाय है परंतु गुण अपेक्षा चित् स्वभाव है। आहाहा... अब - ऐसा उपदेश। इसमें एकेन्द्रिय दोइन्द्रिय (की रक्षा करने में) लगा हो यह करो, वह करो, यह सभी बातें भाई क्रिया काण्ड है। आहाहा ! और वह भी वाचक का वाच्य है वह (उसे) लक्ष्य में लेना, उसे कहते हैं। वाच्य को लक्ष्य में लेना। वाचक शब्द तो आता है, यह भगवान आत्मा, भावाय अर्थात सत्तास्वरूप, द्रव्यस्वरूप तत्त्वस्वरूप, वस्तुस्वरूप भाव है और उसका गुण एव वस्तु है तब उसमें

शक्ति चाहिए ना ? तो `चित्स्वभावाय' उसका ज्ञानादि इसमें ज्ञान की प्रधानता से बात है। ज्ञान और दर्शन (गुण) वह उसका विशेष-विशेष स्वभाव है। आहाहा ! है ?

जिसका स्वभाव चेतना गुणरूप है, इस विशेषण से गुण-गुणी का सर्वथा भेद माननेवाले... देखो ! गुणी आत्मा से ज्ञान सर्वथा भिन्न है - ऐसा माननेवालों का निषेध किया। कथंचित नाम भेद है, भाव भेद भी कथंचित है, परंतु वस्तु अपेक्षा भेद नहीं है। आहाहा ! वैसे तो गुण-गुणी के बीच में भी अतदभाव है, परंतु अभाव नहीं। प्रवचनसार में है। गुणी और गुण के बीच अतद्भाव है, परंतु अभाव नहीं। कि गुणी भिन्न और गुण भिन्न, कि गुणी में गुण नहीं और गुण, गुणी में नहीं - ऐसा नहीं, ऐसी बातें सुनो, विशेषणों से गुण-गुणी का सर्वथा भेद (माननेवाले) कथंचित भेद मानना तो उचित है - ऐसा कहते हैं, ***क्योंकि गुणी और गुण ऐसे दो नाम रखे तो नाम भेद है। भाव भेद भी किसी न्याय से है, नाम भेद हो, कथन भेद हो, फल भेद भी है। आहाहा*** ! परंतु सर्वथा भेद माननेवालों का निषेध किया। कथंचित भेद है। वस्तु भगवान आत्मा सत्ता और चेतनगुण में कथंचित भेद है गुण-गुणी का। दोनों के बीच में निश्चय से अतद्भाव है। परंतु प्रदेश अपेक्षा... प्रदेश दोनों के एक ही हैं, आहाहा! द्रव्य के प्रदेश - गुण के प्रदेश भिन्न हैं और - ऐसा नहीं है देखो ठीक ! प्रदेश भेद हो तो पृथक हो जाता है, परंतु यह प्रदेश भेद नहीं होने पर भी गुण-गुणी भेद है। वस्तु है, और उसके गुण हैं - ऐसा नाम भेद, प्रयोजन भेद, फलरूप भेद, भेद हो, परंतु कथंचित भेद सर्वथा भेद... नहीं आहाहा !

जितने गुणों के प्रदेश हैं उतने ही द्रव्य के हैं जितने द्रव्य के (प्रदेश) हैं उतने ही गुणों के हैं। आहाहा ! अभी पर्याय की बात अलग है, कहो समझ में आया ? गुण-गुणी का सर्वथा भेद माननेवालों (का निषेध है)। गुणगुणी का कथंचित भेद मानना उचित है। कथंचित भेद (है) और कथंचित भेद नहीं - अब यह ऐसी बात ! कथंचित भाव और कथंचित अभाव सर्वथा अभाव भी नहीं और सर्वथा अकेला भाव भी नहीं आहाहा ! भाव स्वरूप होने पर भी पर की अपेक्षा अभावरूप भी उसका गुण है, पररूप नहीं होना - ऐसा अभाव स्वभाव है, अपने रूप रहना - ऐसा भाव स्वभाव है - ऐसा है। आहाहा !

दो बोल हुये, द्रव्य और गुण। जैन दर्शन विश्वदर्शन का मूल स्वरूप द्रव्य, गुण, पर्याय इन तीनों का यहाँ वर्णन पहले श्लोक में यहाँ अस्ति से कहा है `भावाय' इसमें द्रव्य लिया `चित् स्वभावाय' गुण लिया, अब पर्याय शेष रह गई।

`स्वानुभूत्या चकासते' यह पर्याय है। आहाहा ! अपनी स्वयं के अनुभूति, अपनी ही अनुभव रूप क्रिया। देखो ! राग की या पुण्य की क्रिया नहीं। अपने जो गुण

तथा गुणी जो निर्मल शुद्ध हैं उसकी शुद्ध अपनी जो क्रिया। आहाहा ! व्यवहार जो दया-दान-व्रत-भक्ति की क्रिया से जानने में आये - ऐसा यह नहीं - ऐसा नहीं इस प्रकार न कहकर '**स्वानुभूत्या चकासते**' अस्ति से बात की है। समझ में आया? अपनी ही 'स्वानुभूत्या चकासते' है ना ? स्वयं की स्वानुभवरूपी क्रिया, वह क्रिया है तो पर्याय, शुद्ध आनंद और ज्ञान की पर्याय से वह जानने में आता है... आहाहा ! वह पर्याय है, पर्याय नहीं - ऐसा नहीं। कार्य तो पर्याय में होता है और द्रव्य एवं गुण हैं - ऐसा निर्णय तो अनित्य ऐसी पर्याय में होता है। (पर्याय का) अनित्यपना है। आहाहा ! नित्य भी है अनित्य भी है - ऐसा है।

'**स्वानुभूत्या**' स्व-अनुभूति अपनी शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो पवित्र ऐसी शुद्ध क्रिया से जान सकें - ऐसा है। (निजात्मा) व्यवहार क्रिया से जानने में आये - ऐसी यह वस्तु नहीं आहाहा ! है कि नहीं सामने (ग्रन्थमें) ? 'स्वानुभूत्या' 'स्व' अर्थात् स्वयं 'स्वानुभूत्या चकासते' 'स्वंयकी अनुभवनरूप क्रिया से प्रकाशित होता है' अर्थात स्वयं को स्वयं से जानता है। भगवान आत्मा... जिसे व्यवहार और राग की अपेक्षा नहीं ऐसी वह चीज है - ऐसा कहते हैं अपने अनुभव की पर्याय से जानने में आती है। आहाहा ! वह राग से जानने में (नहीं) आती - ऐसी नास्ति से बात नहीं की अस्ति से कहने पर नास्ति उसमें आ जाती है। 'भावाय' अर्थात् अस्ति 'चित्स्वभावाय' में अस्ति और अनुभूति में अस्ति एक में द्रव्य की अस्ति दूसरे में गुणों की अस्ति तीसरे में पर्याय की अस्ति। अस्ति से सिद्ध किया है। आस्रव पुण्य, पाप, बंध और अजीव यह इसमें लिये ही नहीं।

मात्र भावाय, द्रव्य लिया है, चित्स्वभाव गुण लिया है और अनुभूति में संवर निर्जरा लिया। द्रव्य लिया, गुण लिया और स्वानुभूत्या में संवर निर्जरा की शुद्ध पर्याय ली। शुद्ध पर्याय से वह जानने में आये - ऐसा है। व्यवहार और निमित्त से.. वह जानने में आये - ऐसा नहीं। आहाहा ! यहाँ कथंचित नहीं। उसके भाव में कथंचित था, कारण कि कथंचित अभाव भी है। गुण में भी कथंचित भेद है, गुण-गुणी का भेद है। इसप्रकार यहाँ स्वानुभूत्या चकासते में कथंचित अनुभूति से जानने में आता है और कथंचित राग से जानने में आता है - ऐसा नहीं स्वयं से प्रकाशित होता है एवं राग से प्रकाशित नहीं होता - यह बात इसमें आ जाती है। नास्ति की बात अस्ति कहने में आ जाती है। आहाहा ! - ऐसा तो पहला श्लोक है यहाँ तो मंगलाचरण करते हैं !

अपने को स्वयं से जानते हैं, प्रगट करते हैं भगवान आत्मा वस्तु भी कथंचित भाव-अभाव स्वरूप, गुण भी कथंचित भेद, अभेद स्वरूप-अनुभूति की पर्याय से जानने

में आती, अन्य दूसरे से जानने में नहीं आती - ऐसा इसका स्वरूप है। आहाहा!

`**इस विशेषण से आत्मा को और ज्ञान को सर्वथा परोक्ष ही माननेवाले,**' अर्थात् ज्ञान तो परोक्ष है, प्रत्यक्ष हो सकता नहीं (- ऐसा मानना) झूठा है। आहा ! सर्वथा परोक्ष है - ऐसा नहीं कथंचित परोक्ष है पूर्ण केवलज्ञान जब तक न हो तब तक परोक्ष है, परंतु श्रुत ज्ञान द्वारा वह प्रत्यक्ष है इस प्रकार दोनों है। आहाहा ! समझ में आया ? श्रुतज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष है। श्रुतज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष है वह वेदन की अपेक्षा हाँ ! वैसे श्रुत से परोक्ष है केवल से प्रत्यक्ष है श्रुत (ज्ञान) से असंख्य प्रदेश परोक्ष है परंतु उसका अनुभव है वह परोक्ष नहीं। आहाहा ! इतने अधिक पहलु (अपेक्षा) लागू होती है।

(**इस विशेषण से**) `**आत्मा को तथा ज्ञान को सर्वथा परोक्ष ही माननेवाले जैमनीय-भट-प्रभाकर भेदवाले मीमांसको के मत का खण्डन हो गया।**' आहा ! अर्थात् ज्ञान और आत्मा सर्वथा भिन्न परोक्ष ही है - ऐसा माननेवालों का निषेध किया। प्रत्यक्ष है, कथंचित प्रत्यक्ष है, कथंचित परोक्ष है। वेदन की अपेक्षा यह प्रत्यक्ष है एवं बिलकुल असंख्य प्रदेश की अपेक्षा परोक्ष है। केवलज्ञान की अपेक्षा वह प्रत्यक्ष है। कुछ समझ में आया ? पुस्तक तो है सामने ?

इसीप्रकार ज्ञान अन्य ज्ञान से जाना जा सकता है - देखा ! स्वयं अपने को नहीं जानता ऐसे माननेवाले (**नैयायिकों का**) **भी प्रतिषेध हो गया।** ज्ञान है वह दूसरे ज्ञान द्वारा जानने में आये, स्वयं स्वयं से ज्ञात न हो - (- ऐसा नहीं है)। यह ज्ञान जो उत्पन्न होता है वह स्वयं को जानता हुआ ही उत्पन्न होता है। स्वयं स्वयं को जानता हुआ ही उत्पन्न होता है, आहाहा ! स्वतः उसे दूसरे ज्ञान से जानने की आवश्यकता नहीं। अब इस एक श्लोक में इतने प्रकार कितने याद रखना इसे ? अस्ति से याद रखना। सत्ता वस्तु है, गुण-गुणी का वाचक है, वह भेद है, वाच्य भी भेद है। स्वानुभूत्या चकासते इसमें किसी प्रकार पर से अनुभव हो सके - ऐसा नहीं। और वह ज्ञान ज्ञान से ही जानने में आता है। उस ज्ञानको जानने के लिए दूसरे ज्ञान की आवश्यक्ता हो - ऐसा नहीं। निरपेक्षज्ञान... परकी अपेक्षा रखे बिना। आहाहा ! यहाँ तो - ऐसा कहते हैं कि कदाचित् शास्त्र का ज्ञान किया हो, भगवान की वाणी सुनी हो तब वह अपेक्षा रखकर ज्ञान का प्रत्यक्षवेदन हो - ऐसा नहीं। आहाहा !

यह ज्ञान सीधा अपने को वेद सकता है। ***आनंद का वेदन सीधा कर सकता है और कथंचित अपेक्षा से श्रुतज्ञान से भी प्रत्यक्ष कहने में आता (है), क्योंकि जिसमें पर की अपेक्षा नहीं इसलिये प्रत्यक्ष। श्रुतज्ञान से भी सर्वथा परोक्ष ही है - ऐसा***

नहीं। आहाहा ! कथंचित प्रत्यक्ष है, कथंचित परोक्ष है, क्योंकि जो ज्ञान दूसरों की अपेक्षा रखता नहीं... समझ में आया ? इसलिये यह प्रत्यक्ष है, स्वयं से ही है। परंतु असंख्य प्रदेश इसमें पूरे जान सकता नहीं। इस अपेक्षा से केवलज्ञान को प्रत्यक्ष कहा और श्रुत ज्ञान को परोक्ष कहा और प्रत्यक्ष भी कहा। आहाहा ! ***स्वयं स्वयं से जान सके इसलिये प्रत्यक्ष, जिसे राग और निमित्त की अपेक्षा नहीं इसलिये प्रत्यक्ष, और पूरे असंख्य प्रदेशों को ऐसे सीधा जान सकता नहीं अतः परोक्ष। आ हाहाहा ! समझ में आया ?*** - ऐसा है !

ज्ञान अन्य ज्ञान से ज्ञात हो सके, स्वयं स्वयं को नहीं जानता - ऐसा माननेवालों का प्रतिषेध हुआ। आहा ! अस्ति से बात करें तो द्रव्य की, गुण की और पर्याय की, साधक की संवर निर्जरा की शुद्धि से, प्रगट समझ में आता है, इतनी (बात है)।

अब इसकी पूर्णता की व्याख्या करते हैं। आहाहा ! यह भी अस्ति से करते है **`सर्वभावांतरच्छिदे`** सर्वभाव अंतर अपने से भिन्न... अंतर है ना ? सर्व भाव अंतर अपने भाव से भिन्न। स्वयं भावाय है, वस्तु है उससे भिन्न, सर्व भावों में स्वयं आया, अंतरच्छिदे उससे भिन्न भाव उससे भिन्न, उसको जाननेवाला है। सर्व भावांतर सर्व भावों को जाननेवाला - ऐसा नहीं। सर्व भाव जो अपने, उससे भिन्न भाव, उसे जाननेवाला है समझमें आया कुछ ? **`सर्वभावांतरच्छिदे`** का अर्थ - ऐसा नहीं कि सर्व भावों को पूर्णतया जान सके - ऐसा यहाँ अर्थ नहीं। यहाँ तो सर्वभाव जो अपने हैं उससे जो भिन्न सभी भाव उसे पूरी तरह जान सकता है। सर्व भावंतर (अर्थात कि) सर्व भावों से भिन्न भाव, अपना जो भाव सत्ता और गुण-गुणी की बात की- ऐसा जो भाव और भाववान, स्वभाववान और स्वभाव उससे भिन्न (अन्य) भाव। जितने अनंत द्रव्य, गुण और पर्याय... आहाहा ! स्वयं से... है ना ? अन्य सर्व जीव अजीव भिन्न हैं ना ? अपने में सर्व भाव नाम अपने से लिया, उससे भिन्न अर्थात् अन्य सर्व जीवाजीव आहाहा !

जीव और अजीव दूसरे अनंत `चराचर' गति करनेवाले और स्थिर रहनेवाले चर अर्थात् गति करनेवाले और अचर अर्थात् स्थिर रहनेवाले, पदार्थों को सर्वक्षेत्रकालसंबंधी सर्व पदार्थों को सर्वक्षेत्र सर्वकाल संबंधी सर्व विशेषणों सहित भाव। आहाहाहाहा ! सर्व भावांतर, सर्वभाव स्वयं के और अंतर अर्थात अपने अलावा दूसरों के सभी भाव उसे अपने से भिन्न अन्य सर्व जीव अजीव, चलते और स्थिर पदार्थों को सर्वक्षेत्र काल संबंधी... तीन काल और लोकालोकक्षेत्र। आहाहा ! और सभी विशेषणों सहित, उसके सर्व भावों सहित, पर्याय सहित, एक समय में जाननेवाला है। आहाहाहा ! प्रभु पर्याय में पूर्ण सर्वज्ञ की पर्याय, एक ही समय में अपने से भिन्न अनंत पदार्थों के द्रव्य

को, क्षेत्र को, काल को और उसके भावों को गुण और पर्याय सभी को एक समय में जाननेवाला है आहाहा है ? एक ही समय में जाननेवाला है।

इस विशेषण से सर्वज्ञ का अभाव माननेवाले - सर्वज्ञ हो ही नहीं सकता - ऐसा जो कहते हैं - ऐसा मत है, और अनेकों को सर्वज्ञ (पना) हो सके नहीं। वर्तमान में जो पूरणज्ञान है, वर्तमान के इन सर्वज्ञ को तीनकाल और तीनलोक का ज्ञान हो सके नहीं - उनका निषेध किया है। आहाहा ! सर्व अपेक्षा से सर्वज्ञ का अभाव माननेवाले मीमांसक आदि... जैन में रहनेवाले दिगम्बरों में भी (कुछ व्यक्ति) नहीं माननेवाले हैं। एक महेन्द्र (नामके पण्डित जी थे) पण्डित सर्वज्ञ को नहीं मानते थे... उनका स्वर्गवास हो गया। `निराकरण हुआ इस प्रकार सिद्ध करके।' इसप्रकार के गुणोंसे इस प्रकार विशेषणों से शुद्ध आत्मा को ही `शुद्ध आत्मा को' ही इष्टदेव जैसा सिद्ध करके, इष्टदेव कहकर... अपेक्षा से इष्टदेव हैं सच्चे परमात्मा स्वयं इष्ट देव हैं, व्यवहार से सर्वज्ञ परमात्मा इष्टदेव हैं। आहाहा ! उन्हें नमस्कार किया है, शुद्धात्मा को ही, है ? इस विशेषण से शुद्धात्मा को इष्टदेव सिद्ध करके उसे नमस्कार किया है आहाहा !

द्रव्य, गुण, पर्याय और पूर्णता, ये चार बोल लिये हैं। अपना द्रव्य सत्ता है। `भावाय, चित्तस्वभाव गुण, स्वानुभूति पर्याय, संवर निर्जरा। यह द्रव्य गुण संवर निर्जरा-सर्वभावांतरच्छिदे' यह मोक्ष पर्याय की पूर्णता बस। इस प्रकार इन चार बोल में अस्तिपना सिद्ध किया है। समझ में आया ?

उसमें यह पहला श्लोक मंगलाचरण, महा उत्तम

अस्ति जीव है, गुण-गुणी रूप भेद कथंचित हैं, कथंचित नहीं। अपने अनुभव से सिद्ध हो सकता है। परोक्ष और प्रत्यक्ष दोनों तरफ से भी है। कथंचित प्रत्यक्ष और कथंचित परोक्ष है - इसप्रकार इष्टदेव तो अपना आत्मा, परमात्मा रूप इष्टदेव कह कर उसे नमस्कार किया है। इस गाथा का अर्थ पूरा हुआ लो, विशेष आयेगा।

प्रमाण वचन गुरुदेव -

(समयसार का अपूर्व स्वागत करके अंतर में मंगल प्रतिष्ठा करानेवाले श्री सद्गुरुदेव की जय हो !)